कारकं किम्? माणवकस्य पितरं पन्थानं पृच्छति। अर्थात् प्रकृतसूत्र में **कारके** इस के अधिकार की क्या आवश्यकता है? उक्त अधिकार का प्रयोजन है कि अपादानादि के द्वारा अविवक्षित जो कारक, उसकी ही कर्मसञ्ज्ञा हो किन्तु कारकभिन्न की कर्म न हो। अतः **माणवकस्य पितरं पन्थानं पृच्छति** (बालक के पिता से मार्ग पूछता है) इस वाक्य में **पथिन्** प्रधान कर्म है और द्विकर्मक **प्रच्छ्** धातु का योग है। अपादान कारक की अविवक्षा में **पितृ** की कर्मसञ्ज्ञा हुई किन्तु **माणवक** शब्द यहाँ सम्बन्धवाची है और सम्बन्ध कारक नहीं होता है। अतः माणवक की कर्मसञ्ज्ञा नहीं होती। फलतः सम्बन्ध में षष्ठी होकर **माणवकस्य** बन जाता है। **कारके** के अधिकार के अभाव में तो अकारक की भी कर्मसंज्ञा होकर द्वितीया होने की आपत्ति होती।

अकर्मकधातुभिर्योगे देशः कालो भावो गन्तव्योऽध्वा च कर्मसञ्ज्ञक इति वाच्यम्। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- अकर्मक धातुओं के योग में देश, समय, भाव तथा गन्तव्यमार्ग को बतलाने वाले शब्दों की अपादानादि कारकों की अविवक्षा में कर्मसञ्ज्ञा होती है, ऐसा कहना चाहिये। देश-शब्द से स्थान विवक्षित है। यद्यपि **भाव** का सामान्य अर्थ क्रिया है तथापि प्रकृत वार्तिक में **भाव** का अर्थ है- किसी क्रिया के करने में लगने वाला समय। जैसे **गोदोहमास्ते** (गोदोहन काल तक रहता हे) आदि में देखा जाता है। वार्तिक में **अकर्मक धातु** का ग्रहण किया गया है। अतः धातु के सकर्मकत्व और अकर्मकत्व के विषय में पहले समझना होगा। धातु के अर्थ में दो विभाग होते हैं- फल और व्यापार। **फलव्यापारयोर्धातुः (तिष्ठति)।** जिस उद्देश्य की सिद्धि के लिए कोई क्रिया की जाती है, वह **फल** कहलाता है। फल की सिद्धि के लिए जो चेष्टा की जाती है, वह **व्यापार** कहलाता है। फल का आश्रय **कर्म** होता है तथा व्यापार का आश्रय **कर्ता** होता है। जिन धातुओं में फल और व्यापार के आश्रय भिन्न-भिन्न हों, उसे **सकर्मक** धातु कहते हैं और जिन धातुओं में फल और व्यापार का आश्रय एक ही होता है, उन धातुओं को **अकर्मक** धातु कहते हैं। विशेष ज्ञान के लिये भ्वादिप्रकरण के **लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः** सूत्र की व्याख्या देखें।

कुरून् स्वपिति। कुरुदेश में सोता है। यहाँ पर **स्वप्** धातु अकर्मक है। इसके योग में देशवाची **कुरु** शब्द में अधिकरण रूप की अविवक्षा होने से इसकी **अकर्मकधातुभिर्योगे देशः कालो भावो गन्तव्योऽध्वा च कर्मसञ्ज्ञक इति वाच्यम्** वार्तिक से कर्मसञ्ज्ञा हो जाने से **कर्मणि द्वितीया** सूत्र से द्वितीया विभक्ति होकर **कुरून्** सिद्ध हो जाता है। वार्तिक में **देश** शब्द के ग्रहण से **ग्रामे स्वपिति** में अकर्मक धातु का योग होने पर ग्राम-शब्द के देशवानी न होने के कारण कर्मसंज्ञा नहीं होती। यहाँ देश-शब्द का अर्थ अनेक ग्राम, नगर आदि समूहात्मक देश ही विवक्षित है, सामान्य स्थानमात्र नहीं। यह देशवाचक शब्द का उदाहरण है।

मासमास्ते। महीने भर रहता है। यहाँ पर **आस उपवेशने** धातु का प्रयोग है और वह अकर्मक है। इसके योग में कालवाची **मास** में प्राप्त अधिकरणसंज्ञा को बाधकर इसकी **अकर्मकधातुभिर्योगे देशः कालो भावो गन्तव्योऽध्वा च कर्मसञ्ज्ञक इति वाच्यम्** वार्तिक से कर्मसञ्ज्ञा हो जाने से **कर्मणि द्वितीया** सूत्र से द्वितीया विभक्ति होकर **मासम्** सिद्ध हो जाता है। यह कालवाचक शब्द का उदाहरण है।

गोदोहमास्ते। गाय दुहने के समय तक रहता है। यहाँ पर भी **आस उपवेशने** धातु का प्रयोग है और वह अकर्मक है ही। इसके योग में भाववाची **गोदोह** शब्द में प्राप्त अधिकरणसंज्ञा को बाधकर इसकी **अकर्मकधातुभिर्योगे देशः कालो भावो गन्तव्योऽध्वा च कर्मसञ्ज्ञक इति वाच्यम्** वार्तिक से कर्मसञ्ज्ञा हो जाने से **कर्मणि द्वितीया** सूत्र से द्वितीया विभक्ति होकर **गोदोहम्** सिद्ध हो जाता है। यह भाव का उदाहरण है।

क्रोशमास्ते। कोस भर है। यहाँ पर भी अकर्मक **आस** धातु का प्रयोग है। इसके योग में गन्तव्यमार्गवाची **क्रोश** शब्द में प्राप्त अधिकरणसंज्ञा को बाधकर इसकी **अकर्मकधातुभिर्योगे देशः कालो भावो गन्तव्योऽध्वा च कर्मसञ्ज्ञक इति वाच्यम्** वार्तिक से कर्मसञ्ज्ञा हो जाने से **कर्मणि द्वितीया** सूत्र से द्वितीया विभक्ति होकर **क्रोशम्** सिद्ध हो जाता है। अत्यन्त संयोग होने पर तो **कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे** से द्वितीया होती है। उसके न होने पर भी अकर्मक **आस्** धातु के योग में गन्तव्य मार्गवाची **क्रोश** शब्द की कर्मसंज्ञा हुयी है। यह गन्तव्याध्वा का उदाहरण है।

५४०. गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणिकर्ता स णौ १।४।५२॥

गत्याद्यर्थानां शब्दकर्मणामकर्मकाणां चाणौ यः कर्ता स णौ कर्म स्यात्।

शत्रूनगमयत् स्वर्गं वेदार्थं स्वानवेदयत्।

आशयच्चामृतं देवान् वेदमध्यापयद् विधिम्॥

आसयत् सलिले पृथ्वीं यः स मे श्रीहरिर्गतिः।

गतीत्यादि किम्? पाचयत्योदनं देवदत्तेन।

अण्यन्तानाम् किम्? गमयति देवदत्तो यज्ञदत्तम्, तमपरः प्रयुङ्क्ते, गमयति देवदत्तेन यज्ञदत्तं विष्णुमित्रः।

'नीवह्योर्न'(वा.११०९)। नाययति वाहयति वा भारं भृत्येन।

'नियन्तृकर्तृकस्य वहेरनिषेधः' (वा.१११०)। वाहयति रथं वाहान् सूतः।

'आदिखाद्योर्न' (वा.११०९)। आदयति खादयति वान्नं बटुना।

'भक्षेरहिंसार्थस्य न' (वा.१११११)। भक्षयत्यन्नं बटुना। अहिंसार्थस्य किम्? भक्षयति बलीवर्दान् सस्यम्।

'जल्पतिप्रभृतीनामुपसंख्यानम्'(वा.११०७)। जल्पयति भाषयति वा धर्मं पुत्रं देवदत्तः।

'दृशेश्च' (वा.११०८)। दर्शयति हरिं भक्तान्। सूत्रे ज्ञानसामान्या- र्थानामेव ग्रहणम्, न तु तद्विशेषार्थानामित्यनेन ज्ञाप्यते। तेन स्मरति जिघ्रतीत्यादीनां न। स्मारयति घ्रापयति वा देवदत्तेन।

'शब्दायतेर्न (वा.११०५)। शब्दाययति देवदत्तेन।

धात्वर्थसंगृहीतकर्मत्वेनाकर्मकत्वात्प्राप्तिः। येषां देशकालादिभिन्नं कर्म न सम्भवति तेऽत्राकर्मकाः, न त्वविवक्षितकर्माणोऽपि। तेन 'मासमासयति देवदत्तम्' इत्यादौ कर्मत्वं भवति, 'देवदत्तेन पाचयति' इत्यादौ तु न।

गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणि कर्ता स णौ। गतिश्च बुद्धिश्च प्रत्यवसानञ्च गतिबुद्धिप्रत्यवसानानि, तानि अर्थाः येषां ते गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थाः (धातवः)। शब्दः कर्म येषां ते शब्दकर्माणः। अविद्यमानं कर्म येषां ते अकर्मकाः। गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थाश्च शब्दकर्माणश्च अकर्मकाश्च ते गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकास्तेषाम्। न णिः अणिः, अणौ कर्ता अणिकर्ता। गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणां षष्ठ्यन्तम्, अणिकर्ता प्रथमान्तं, स प्रथमान्तं, णौ सप्तम्यन्तम् अनेकपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **कारके** का अधिकार है और **कर्तुरीप्सिततमं कर्म** से **कर्म** की अनुवृत्ति आती है।

गति अर्थ वाली धातु, ज्ञान अर्थ वाली धातु, भोजन अर्थ वाली धातु, शब्दकर्मक (शब्द ही है कर्मकारम जिसकी, ऐसी) धातु और अकर्मक धातुओं के अण्यन्त अवस्था के कर्ता की ण्यन्त अवस्था में कर्मसंज्ञा होती है।

अणिकर्ता में **अणौ** का अर्थ है- णिच् की अनुत्पत्ति की अवस्था में। अतः णिच् यहाँ नहीं लिया जाता है, क्योंकि जो भी चुरादि (स्वार्थिक णिजन्त) होगा, उसमें णिच् की अनुत्पत्ति अवस्था असम्भव है। अतः **हेतुमान् णिच्** ही यहाँ पर गृहीत हैं।

गम्, इण् आदि धातुयें गत्यर्थक हैं। **बुध्, ज्ञा, विद्** आदि धातुयें ज्ञानार्थक हैं। प्रत्यवसान का अर्थ है- **भक्षण।** अतः **भक्ष्, अश्, अद्, भुज्** आदि भक्षणार्थक धातु हैं। **शब्दकर्मक** का अर्थ है- जिनका कर्म कोई शब्द होता हो। अकर्मक का अर्थ है- जिस धातु के फल और व्यापार का आश्रय एक ही हो। अकर्मक धातु का सामान्य दशा में जो कर्ता होता है, वह प्रेरणार्थक क्रिया में कर्म बन जाता है। इस सूत्र के अर्थ को समझने के पहले **ण्यन्त-कर्ता** और **अण्यन्त कर्ता** को समझना जरूरी है।

ण्यन्तप्रकरण में **पठति** से **पाठयति**, **चलति** से **चालयति, भवति** से **भावयति** आदि रूप बनते हैं। किसी भी धातु से प्रेरणा अर्थ में **णिच्** होकर पुनः उसकी धातुसंज्ञा होकर लट् आदि लकार आते हैं। **णिच्**-प्रत्यय लगने के बाद धातु **ण्यन्त** हो जाता है। **णिच्** नहीं हुआ है तो वह **अण्यन्त** कहलायेगा। सामान्य धातु का कर्ता अन्य कुछ होता है तो णिजन्त धातु का कर्ता अन्य ही होता है। जैसे **देवदत्तः पठति** (देवदत्त पढ़ता है) में पठ् धातु है और अण्यन्त है। यहाँ अण्यन्त अवस्था का कर्ता **देवदत्तः** है। अब **पठ्** धातु से **णिच्** कर दें, **ण्यन्त** होकर **पाठयति** बनेगा। पाठयति का अर्थ हुआ- **पढ़ाता है**। पढ़ने वाला देवदत्त था तो पढाने वाला अन्य कोई होगा। आचार्य पढ़ाते हैं, अतः पढ़ाने के कर्ता आचार्य हुए। तब वाक्य बना- **आचार्यः देवदत्तं पाठयति।** इस प्रकार से आपने देखा कि अण्यन्त अवस्था में जो **देवदत्त** कर्ता था वह ण्यन्त अवस्था में कर्म हुआ। **देवदत्तः पठति, आचार्यः तं देवदत्तं पाठयति**= देवदत्त पढ़ता है और आचार्य उस देवदत्त को पढ़ाते हैं। दो वाक्यों में एक अण्यन्त अवस्था का वाक्य है तो एक ण्यन्त अवस्था का। यह सूत्र अण्यन्त अवस्था के कर्ता की ण्यन्त अवस्था में कर्मसंज्ञा करता है। उक्त वाक्य में अण्यन्त अवस्था का कर्ता देवदत्त था, उसी की इस सूत्र से कर्मसंज्ञा हुई। कर्मसंज्ञा का फल **कर्मणि द्वितीया** से द्वितीया विभक्ति करना है। इस वाक्य में पूर्व कर्ता **देवदत्त** में द्वितीया विभक्ति हुई तो वाक्य का स्वरूप बना- **आचार्यः देवदत्तं पाठयति।** अण्यन्त अवस्था में कर्ता के साथ

क्रिया तो रहती ही है, इष्टतम कर्म भी रह सकता है और उसकी **कर्तुरीप्सिततमं कर्म** से कर्मसंज्ञा होकर उसमें द्वितीया विभक्ति होती है। वह इस सूत्र का विषय नहीं है।

इस सूत्र में ण्यन्त वाक्य बनने पर दो कर्म होते हैं। अण्यन्त अवस्था का कर्ता ही ण्यन्त अवस्था में कर्म बन जाता है। अण्यन्तावस्था के कर्ता की ण्यन्तावस्था में कर्मसंज्ञा होने पर भी उसको **प्रयोज्य कर्ता** कहते हैं और ण्यन्तावस्था के कर्ता को **प्रयोजक कर्ता।** ण्यन्तावस्था का कर्ता प्रयोजक, प्रेरक होता है अतः उसे **प्रयोजक कर्ता** कहा जाता है और उसका कर्म **प्रेर्य** होने के कारण **प्रयोज्य कर्ता** कहलाता है।

यह सूत्र सम्पूर्ण धातुओं के अण्यन्त अवस्था के कर्ता की ण्यन्त में कर्मसंज्ञा नहीं करता किन्तु कुछ ही धातुओं में यह कार्य होता है। जैसे **गति अर्थ वाले धातु, ज्ञान अर्थ वाले धातु, भोजन अर्थ वाले धातु, शब्द सम्बन्धी कर्म वाले धातु** और **अकर्मक** धातु हों तो, उन्हीं के अण्यन्त अवस्था के कर्ता की ण्यन्त अवस्था में कर्मसंज्ञा होती है। धातुपाठ में जिस धातु का अर्थ **गत्याम्, गतौ** आदि लिखा है ऐसे धातु, ज्ञान अर्थ वाले धातु, भोजन अर्थ वाले धातु, जिन धातुओं का कर्म शब्द से सम्बन्ध रखता है, जैसे पढ़ाना आदि और जिन धातुओं में कर्म ही नहीं लगते ऐसे अकर्मक धातुओं के अण्यन्त की अवस्था को पहले देखना होगा। उसके बाद उन धातुओं में णिच् प्रत्यय अर्थात् ण्यन्त का रूप बनाना होगा। फिर अण्यन्त अवस्था के कर्ता को वर्तमान ण्यन्त अवस्था में इस सूत्र के द्वारा कर्मसंज्ञा की जायेगी। इनके कुछ सरल उदाहरण क्रमशः यहाँ पर बताकर पुनः कौमुदी प्रदत्त उदाहरण बताये जायेंगे, क्योंकि कौमुदी में विशेष उदाहरण लङ् लकार का प्रयोग करके श्लोक से दिखाये गये हैं।

रामः कृष्णं गृहं गमयति। राम कृष्ण को घर भेजता है। यह गत्यर्थक **गम्** धातु का उदाहरण है। पहले इसमें अण्यन्त का वाक्य बनाइये- **कृष्णः गृहं गच्छति।** कर्ता **कृष्णः**, इष्टतम कर्म **गृहम्**, क्रिया **गच्छति** है। जाने वाले **कृष्ण** को भेजने वाला **राम** है। **गच्छति** इस अण्यन्त रूप को **हेतुमति च** से णिच् करके ण्यन्त में बदल दिया। गच्छति से **गमयति** बना। अण्यन्त अवस्था में **कृष्ण** कर्ता था तो उसको भेजने वाला **राम** ण्यन्त में **कर्ता** बना। गत्यर्थक धातु का योग है। अण्यन्त अवस्था के कर्ता **कृष्ण** की **गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणिकर्ता स णौ** से कर्मसंज्ञा हो गई और उसमें द्वितीया विभक्ति होने पर **रामः कृष्णं गृहं गमयति।** यहाँ पर प्रयोज्य कर्ता **कृष्ण** और प्रयोजक कर्ता **राम** है।

आचार्यश्छात्रं कौमुदीं बोधयति। आचार्य छात्र को कौमुदी समझाता है। यह बुद्ध्यर्थक **बुध्** धातु का उदाहरण है। पहले इसमें अण्यन्त का वाक्य बनाइये- **छात्रः कौमुदीं बुध्यते।**(बुध अवबोधने, दिवादि, आत्मनेपदी)। कर्ता **छात्रः**, इष्टतम कर्म **कौमुदीम्**, क्रिया **बुध्यते** है। समझने वाले छात्र को समझाने वाला **आचार्य** है। **बुध्यते** इस **अण्यन्त** रूप को **हेतुमति च** से णिच् करके ण्यन्त में बदल दिया। **बुध्यते** से **बोधयति** बना। अण्यन्त अवस्था में छात्र **कर्ता** था तो उसको समझाने वाला आचार्य **ण्यन्त** में **कर्ता** बना। बुद्ध्यर्थक धातु का योग है। अण्यन्त अवस्था के कर्ता **छात्र** की **गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणिकर्ता स णौ** से कर्मसंज्ञा हो गई और उसमें द्वितीया विभक्ति हो गई- **आचार्यः छात्रं कौमुदीं बोधयति।** यहाँ पर प्रयोज्य कर्ता **छात्र** और प्रयोजक कर्ता **आचार्य** है।

माता पुत्रं क्षीरान्नं भोजयति। माता पुत्र को खीर खिलाती है। यह भोजनार्थक **भुज्** धातु का उदाहरण है। (**भुज पालनाभ्यवहारयोः,** रुधादि, भोजन अर्थ में आत्मनेपदी।) पहले इसमें अण्यन्त का वाक्य बनाइये- **पुत्रः क्षीरान्नं भुङ्क्ते।** कर्ता **पुत्रः,** इष्टतम कर्म **क्षीरान्नं**, क्रिया **भुङ्क्ते** है। खाने वाले पुत्र को खिलाने वाली माता है। इस अण्यन्तरूप को **हेतुमति च** से णिच् करके ण्यन्त में बदल दिया। भुङ्क्ते से **भोजयति** बना। अण्यन्त अवस्था में पुत्र कर्ता था तो उसको खिलाने वाली माता ण्यन्त में **कर्ता** बनी। भोजनार्थक धातु का योग है। अण्यन्त अवस्था के कर्ता पुत्र की **गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणिकर्ता स णौ** से कर्मसंज्ञा हो गई और उसमें द्वितीया विभक्ति होकर **माता पुत्रं क्षीरान्नं भोजयति।** यहाँ पर प्रयोज्य कर्ता **पुत्र** और प्रयोजक कर्ता **माता** है।

गुरुः शिष्यान् वेदार्थान् पाठयति। गुरु शिष्यों को वेदार्थ (वेदों के अर्थों को) पढाते हैं। यह **शब्दकर्मक पठ् धातु** का उदाहरण है। पहले इसमें अण्यन्त का वाक्य बनाइये- **शिष्यः वेदार्थं पठति।** कर्ता शिष्यः, इष्टतम कर्म वेदार्थम्, क्रिया पठति है। पढ़ने वाले शिष्य को पढ़ाने वाला गुरु है। **पठति** इस अण्यन्त रूप को **हेतुमति च** से णिच् करके ण्यन्त में बदल दिया। पठति से **पाठयति** बना। अण्यन्त अवस्था में शिष्य कर्ता था तो उसको पढाने वाला गुरु ण्यन्त में कर्ता बना। शब्दकर्मक धातु का योग है। अण्यन्त अवस्था के कर्ता शिष्य की **गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणिकर्ता स णौ** से कर्मसंज्ञा हो गई और उसमें द्वितीया विभक्ति होकर **गुरुः शिष्यान् वेदार्थान् पाठयति।** यहाँ पर प्रयोज्य कर्ता **शिष्य** और प्रयोजक कर्ता **गुरु** है।

कौशल्या रामं शाययति। कौशल्या राम को सुलाती है। यह अकर्मक (अदादि, आत्मनेपदी) **शी** धातु का उदाहरण है। पहले इसमें अण्यन्त का वाक्य बनाइये- **रामः शेते।** कर्ता राम, अकर्मक धातु होने के कारण इष्टतम कर्म नहीं है, क्रिया शेते है। सोने वाले राम को सुलाने वाली कौशल्या है। शेते इस अण्यन्त रूप को ण्यन्त में अर्थात् **हेतुमति च** से णिच् करके ण्यन्त में बदल दिया। शेते से **शाययति** बना। अण्यन्त अवस्था में राम कर्ता था तो उसको सुलाने वाली कौशल्या ण्यन्त में कर्ता बनी। अकर्मक धातु का योग है। अण्यन्तावस्था के कर्ता राम की **गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्म- काणामणिकर्ता स णौ** से कर्मसंज्ञा हो गई और उसमें द्वितीया विभक्ति होकर **कौशल्या रामं शाययति।** यहाँ पर प्रयोज्य कर्ता **राम** और प्रयोजक कर्ता **कौशल्या** है।

क्रिया की सिद्धि अर्थात् निष्पत्ति में जो जो साधक अर्थात् निमित्त होते हैं उन्हें कारक कहते हैं। जैसे- **कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण।** इन कारकों में से जो सबसे स्वतन्त्र हो अर्थात् जो क्रिया का निष्पादन करता हो, उसको **कर्ता** कहा गया है, यह सामान्यतः समझ लें, वास्तविक लक्षण तो आगे **स्वतन्त्र कर्ता** सूत्र में स्पष्टतया बताया जायेगा। तात्पर्य यह है कि जैसे अन्य कारक कर्ता से प्रेरित होकर क्रिया का निष्पादन करते हैं वैसे कर्ता अन्य कारकों से प्रेरित होकर क्रिया का निष्पादन नहीं करता अपितु स्वतन्त्रतया क्रिया का जनक होता है। कर्तृवाच्य में जिस प्रकार से कर्ता के अनुसार क्रिया में भी पुरुष और वचन की व्यवस्था की जाती है, उस प्रकार कर्म आदि के अनुसार नहीं है। इसलिए क्रिया में कर्ता स्वतन्त्रतया विवक्षित होता है।

अब कौमुदी में प्रदत्त उदाहरणों को देखें-

शत्रूनगमयत् स्वर्गं वेदार्थं स्वानवेदयत्।
आशयच्चामृतं देवान् वेदमध्यापयद् विधिम्॥
आसयत् सलिले पृथ्वीं यः स मे श्रीहरिर्गतिः। पद्यार्थः- जिन श्रीहरि ने शत्रुओं को भी स्वर्ग पहुँचाया, स्वजनों को वेदार्थ का ज्ञान कराया, देवताओं को अमृत पिलाया, ब्रह्मा को वेद पढ़ाया और पृथिवी को जल में स्थापित किया, वे श्रीहरि मेरी गति हैं। इस पद्य में पाँच वाक्य हैं और उनका कर्ता एक मात्र **श्रीहरिः** हैं।

शत्रून् अगमयत् स्वर्गम्। (श्रीहरि ने) शत्रुओं को स्वर्ग पहुँचाया। **शत्रवः स्वर्गम् अगच्छन्, तान् श्रीहरिः प्रैरयत् इति शत्रून् स्वर्गम् अगमयत्।** यहाँ पर **गम्लृ गतौ (गम्)** धातु का प्रयोग है। पहले इसमें अण्यन्त का वाक्य बनाइये- **शत्रवः स्वर्गम् अगच्छन्।** कर्ता **शत्रवः** है और उसका इष्टतम कर्म **स्वर्गम्** है तथा क्रिया **अगच्छन्** है। उनको स्वर्ग पहुँचाने वाले **श्रीहरि** प्रयोजक कर्ता हैं। लङ् लकार के **अगच्छन्** इस अण्यन्त रूप को ण्यन्त में अर्थात् **हेतुमति च** से णिच् करके ण्यन्त में बदल दिया तो **अगच्छन्** से **अगमयत्** बना। अण्यन्त अवस्था में शत्रु कर्ता थे तो ण्यन्त में **श्रीहरि** कर्ता बने। गत्यर्थक धातु का योग है। अण्यन्त अवस्था के कर्ता शत्रु की **गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणि कर्ता स णौ** से कर्मसंज्ञा हो गई और उसमें द्वितीया विभक्ति होकर वाक्य बना- **श्रीहरिः शत्रून् स्वर्गम् अगमयत्।** यहाँ पर प्रयोज्य कर्ता **शत्रु** और प्रयोजक कर्ता **श्रीहरि** हैं। यह गत्यर्थक धातु का उदाहरण है।

वेदार्थं स्वान् अवेदयत्। (श्रीहरि ने) स्वजनों को वेदार्थ का ज्ञान कराया। **स्वे वेदार्थम् अविदुः, तान् श्रीहरिः प्रैरयत् इति स्वान् वेदार्थम् अवेदयत्।** यहाँ पर बुद्ध्यर्थक **विद ज्ञाने** धातु का प्रयोग है। पहले इसमें अण्यन्त का वाक्य बनाइये- **स्वे वेदार्थम् अविदुः।** कर्ता **स्वे** (स्व-शब्द का प्रथमाबहुवचनान्त) है और उसका इष्टतम कर्म **वेदार्थम्** है तथा क्रिया **अविदुः** (लङ्, प्रथमपुरुष, बहुवचन) है। उनको वेदार्थ का ज्ञान कराने वाले **श्रीहरि** प्रयोजक कर्ता हैं। लङ् लकार के **अविदुः** इस अण्यन्त रूप को ण्यन्त में अर्थात् **हेतुमति च** से णिच् करके ण्यन्त में बदल दिया। **अविदुः** से **अवेदयत्** बना। अण्यन्त अवस्था में स्वजन कर्ता थे तो ण्यन्त में **श्रीहरि** कर्ता बने। बुद्ध्यर्थक धातु का योग है। अण्यन्त अवस्था के कर्ता **स्व** की **गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्म- काणामणिकर्ता स णौ** से कर्मसंज्ञा हो गई और उसमें द्वितीया विभक्ति होकर वाक्य बना- **श्रीहरिः स्वान् वेदार्थम् अवेदयत्।** यहाँ पर प्रयोज्य कर्तृपद **स्व** और प्रयोजक कर्ता **श्रीहरि** हैं। यह बुद्ध्यर्थक धातु का उदाहरण है।

आशयच्चामृतं देवान्। (श्रीहरि ने) देवताओं को अमृत पिलाया। **देवाः अमृतम् आश्नन्, तान् श्रीहरिः प्रैरयत् इति देवान् अमृतम् आशयत्।** यहाँ पर प्रत्यवसानार्थ **अश भोजने** धातु का प्रयोग है। पहले इसमें अण्यन्त का वाक्य बनाइये- **देवाः अमृतम् आश्नन्।** इस वाक्य में कर्तृपद **देवाः** है और उसका इष्टतम कर्म **अमृतम्** है तथा क्रिया **आश्नन्** (लङ्, प्रथमपुरुष, बहुवचन) है। उनको अमृत पिलाने वाले **श्रीहरि** प्रयोजक कर्ता हैं। लङ् लकार के **आश्नन्** इस अण्यन्त रूप को ण्यन्त में अर्थात् **हेतुमति च** से णिच् करके ण्यन्त में बदल दिया। **आश्नन्** से **आशयत्** बना। अण्यन्त अवस्था में **देव** कर्ता थे तो ण्यन्त में **श्रीहरि** कर्ता बने। प्रत्यवसानार्थ धातु का योग है। अण्यन्त अवस्था के कर्ता **देव** की **गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणि कर्ता स णौ** से

कर्मसंज्ञा हो गई और उसमें द्वितीया विभक्ति हो गई- **श्रीहरिः देवान् अमृतम् आशयत्।** यहाँ पर प्रयोज्य कर्ता **देव** और प्रयोजक कर्ता **श्रीहरि** हैं। यह प्रत्यवसानार्थक धातु का उदाहरण है।

वेदम् अध्यापयद् विधिम्। (श्रीहरि ने) ब्रह्मा को वेद पढ़ाया। **विधिः वेदम् अध्यैत, तम् श्रीहरिः प्रैरयत् इति विधिं वेदमध्यापयत्।** यहाँ पर शब्दकर्मक **अधि**-पूर्वक **इङ् अध्ययने** धातु का प्रयोग है। पहले इसमें अण्यन्त का वाक्य है- **विधिः वेदम् अध्यैत।** इस वाक्य में कर्ता **विधिः** है और उसका इष्टतम कर्म **वेदम्** तथा क्रिया **अध्यैत** (लङ्, प्रथमपुरुष, एकवचन) है। उनको वेद पढ़ाने वाले **श्रीहरि** प्रयोजक कर्ता हैं। लङ् लकार के **अध्यैत** इस अण्यन्त रूप को ण्यन्त में परिणत करने पर **अध्यापयत्** बना। अण्यन्त अवस्था में **विधि** कर्ता थे तो ण्यन्त में **श्रीहरि** कर्ता बने। शब्दकर्मक धातु का योग है। अण्यन्त अवस्था के कर्ता **विधि** की **गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्म- काणामणि कर्ता स णौ** से कर्मसंज्ञा हो गई और उसमें द्वितीया विभक्ति हो गई- **श्रीहरिः विधिं वेदम् अध्यापयत्।** यहाँ पर प्रयोज्य कर्ता **विधि** और प्रयोजक कर्ता **श्रीहरि** हैं। यह शब्दकर्मक धातु का उदाहरण है। शब्द ही कर्म है, जिस धातु का, उसे शब्दकर्मक धातु कहते हैं।

आसयत् सलिले पृथ्वीम्। (श्रीहरि ने) पृथ्वी को जल में रखा। **पृथ्वी सलिले आस्त, ताम् श्रीहरिः प्रैरयत् इति पृथ्वीं सलिले आसयत्।** यहाँ पर अकर्मक **अस भुवि** धातु का प्रयोग है। पहले इसमें अण्यन्त का वाक्य है- **पृथ्वी सलिले आस्त।** इस वाक्य में कर्ता **पृथ्वी** है और अकर्मक धातु होने के कारण उसका इष्टतम कर्म नहीं है। क्रियापद **आस्त** (लुङ्, प्रथमपुरुष, एकवचन) है। पृथ्वी को जल में स्थापित करने वाले **श्रीहरि** प्रयोजक कर्ता हैं। **आस्त** इस अण्यन्त रूप को ण्यन्त में परिणत करने पर **आसयत्** बना। अण्यन्त अवस्था में **पृथ्वी** कर्त्री थी तो ण्यन्त में **श्रीहरि** कर्ता बने। अकर्मक धातु का योग है। अण्यन्त अवस्था की कर्त्री **पृथ्वी** की **गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्द- कर्माकर्मकाणामणि कर्ता स णौ** से कर्मसंज्ञा हो गई और उसमें द्वितीया विभक्ति होकर बना- **श्रीहरिः पृथ्वीं सलिले आसयत्।** यहाँ पर प्रयोज्य कर्ता **पृथ्वी** और प्रयोजक कर्ता **श्रीहरि** हैं। यह अकर्मक धातु का उदाहरण है।

प्रकृतसूत्र का अर्थ और इसके उदाहरणों का ठीक से अभ्यास करके अन्य उदाहरण स्वयं बना लेना चाहिये, क्योंकि ण्यन्त वाक्य में कर्मसंज्ञा करने वाला यही एक मात्र सूत्र है। यद्यपि अगला **हृक्रोरन्यतरस्याम्** सूत्र भी है किन्तु इस कार्य के लिये उसमें केवल दो धातुओं का ग्रहण है।

गतीत्यादि किम्? पाचयत्योदनं देवदत्तेन। यह प्रश्न है कि प्रकृतसूत्र में **गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणाम्** पद का क्या प्रयोजन है? केवल **अणिकर्ता स णौ** इतना मात्र सूत्र होता तो क्या हानि है? इसका उत्तर है- **पाचयति ओदनं देवदत्तेन** इत्यादि में अण्यन्तावस्था के कर्ता की कर्मसंज्ञा न होने पावे, एतदर्थ उक्त शब्दों का ग्रहण आवश्यक है। क्योंकि यदि सूत्र **गति..... अकर्मकाणाम्** तक का भाग न पढ़ा जाय तो सूत्र का अर्थ होगा- किसी भी धातु के अण्यन्तावस्था के कर्ता की ण्यन्तावस्था में कर्मसंज्ञा हो। ऐसी स्थिति में मूलोक्त सभी उदाहरणों में तो कोई हानि नहीं है किन्तु **पाचयति ओदनं देवदत्तेन** वाक्य नहीं बन पायेगा। वह इस प्रकार **देवदत्तः ओदनं पचति** यह सामान्य (अण्यन्त) अवस्था है। सूत्रोक्त गति आदि शब्दों के अभाव में इसके **पचति** इस अण्यन्तावस्था के कर्ता **देवदत्त** की ण्यन्तावस्था (पाचयति) में कर्मसंज्ञा होकर द्वितीया होने से **देवदत्तम्** बनेगा, न कि **देवदत्तेन।** अतः गत्यादि अर्थ वाली धातुओं के अण्यन्तावस्था के कर्ता की ही कर्मसंज्ञा हो, अन्य की न हो, इस नियम के लिये प्रकृतसूत्र में **गतिबुद्ध** आदि का ग्रहण सार्थक (आवश्यक) हो जाता है। चूँकि **पच्** धातु सूत्रोक्त धातुओं में परिगणित नहीं है। अतः इसका कर्ता **देवदत्त** ण्यन्त अवस्था में कर्मसञ्ज्ञक नहीं होता है। प्रेरककर्ता उक्त होता है, परन्तु प्रयोज्य कर्त्ता अनुक्त ही रहता है। अतः **कर्तृकरणयोस्तृतीया** से तृतीया होकर **यज्ञदत्तो देवदत्तेन ओदनं पाचयति** ऐसा प्रयोग बन जाता है।

अण्यन्तानाम् किम्? गमयति देवदत्तो यज्ञदत्तम्, तमपरः प्रयुङ्क्ते, गमयति देवदत्तेन यज्ञदत्तं विष्णुमित्रः। प्रश्न है कि प्रकृतसूत्र में **अण्यन्तानाम्** अर्थ वाले **अणि** शब्द का क्या प्रयोजन है? इसका समाधान बताते हैं कि गत्यर्थक आदि धातुओं की अण्यन्त अवस्था में जो कर्ता, वह ण्यन्त अवस्था में कर्मसञ्ज्ञक हो किन्तु जो स्वयं अण्यन्तावस्था का ही कर्ता हो, उसकी कर्मसंज्ञा न हो। जैसे कि **यज्ञदत्तो गच्छति** इस अण्यन्तावस्था का कर्ता **यज्ञदत्त** है। इस वाक्य को ण्यन्त करने पर दूसरे प्रयोजक कर्ता के रूप में **देवदत्त** पद आया और धातु का णिजन्त रूप **गमयति** बना। गत्यर्थक धातु का प्रयोग होने के कारण अण्यन्तावस्था के कर्ता **यज्ञदत्त** की **गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थ- शब्दकर्माकर्मकाणामणि कर्ता स णौ** से कर्मसंज्ञा होने पर **यज्ञदत्तम्** बना। वाक्य बना- **देवदत्तो यज्ञदत्तं गमयति** (देवदत्त यज्ञदत्त को भेजता है)। यहाँ प्रयोजक कर्ता **देवदत्त** ण्यन्तावस्था का ही कर्ता तो है किन्तु अण्यन्तावस्था का कर्ता एक बार भी नहीं बना है। अब हमें **विष्णुमित्र देवदत्त के द्वारा यज्ञदत्त को भिजवाता है** अर्थ को लाना

है। ऐसी स्थिति में ण्यन्त **गमि** धातु से पुनः णिच् करके एक णिच् का लोप होने पर **गमयति** ही बनता है किन्तु इस द्वितीय णिजन्त का प्रयोजक कर्ता **विष्णुमित्र** होगा। इस स्थिति में जो अण्यन्तावस्था में कर्ता नहीं था, ऐसे **देवदत्त** की कर्मसंज्ञा यद्यपि अपेक्षित नहीं है तथापि प्रकृतसूत्र में **अणि** शब्द का ग्रहण न हो तो द्वितीय ण्यन्तावस्था के कर्ता **देवदत्त** की कर्मसंज्ञा होने लगेगी, जो अभीष्ट नहीं है। अतः अनभीष्ट स्थल में कर्मसंज्ञा को रोकने के लिये **अणि** कहा गया। फलतः ण्यन्त के कर्ता **देवदत्त** की कर्मसंज्ञा नहीं हुयी किन्तु **कर्तृकरणयोस्तृतीया** से तृतीया होकर **देवदत्तेन** बन गया है। यही **अणि** शब्द की सार्थकता है। इस प्रत्युदाहरण के तीन वाक्य बने हैं-

प्रथमावस्था- **यज्ञदत्तो गच्छति।**

द्वितीयावस्था- **देवदत्तो यज्ञदत्तं गमयति।**

तृतीयावस्था- **विष्णुमित्रः देवदत्तेन यज्ञदत्तं गमयति।**

नीवह्योर्न। यह वार्तिक है। **कारके** का अधिकार तो है ही साथ ही प्रकृतसूत्र से **अणि, कर्ता, णौ** और **कर्तुरीप्सिततमं कर्म** से **कर्म** की अनुवृत्ति रहती है। वार्तिकार्थः- **नी** तथा **वह्** धातुओं के अण्यन्त अवस्था के कर्ता की ण्यन्तावस्था में कर्मसंज्ञा नहीं होती। ये दोनों धातुयें गत्यर्थक हैं, अतः प्रकृतसूत्र से अण्यन्तावस्था के कर्ता की ण्यन्तावस्था में कर्मसंज्ञा की प्राप्ति थी, उसका इस वार्तिक से निषेध किया गया है।

(देवदत्तः) नाययति भारं भृत्येन। देवदत्त भृत्य से भार ढोवाता है। अण्यन्तावस्था का वाक्य है- **भृत्यो भारं नयति।** इसका कर्ता है- **भृत्य। नयति** को ण्यन्त करने पर **नाययति** बनता है। गत्यर्थक होने के कारण अण्यन्तावस्था के प्रयोज्यकर्ता **भृत्य** की **गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणिकर्ता स णौ** कर्मसंज्ञा प्राप्त होने पर उसका **नीवह्योर्न** वार्तिक से निषेध हो जाने से द्वितीया नहीं हुयी, अपितु **कर्तृकरणयोस्तृतीया** से करणार्थ में तृतीया होकर **भृत्येन** बन जाता है।

(देवदत्तः) वाहयति भारं भृत्येन। देवदत्त भृत्य से भार ढोवाता है। अण्यन्तावस्था का वाक्य है- **भृत्यो भारं वहति।** इसका कर्ता है- **भृत्य। वहति** को ण्यन्त करने पर **वाहयति** बनता है। गत्यर्थक होने के कारण अण्यन्तावस्था के प्रयोज्यकर्ता **भृत्य** की **गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणिकर्ता स णौ** से प्राप्त कर्मसंज्ञा का **नीवह्योर्न** वार्तिक से निषेध हो जाने से द्वितीया नहीं हुयी, अपितु **कर्तृकरणयोस्तृतीया** से तृतीया होकर **भृत्येन** बन जाता है।

मूल में प्रदत्त **नाययति वाहयति वा भारं भृत्येन** यह वाक्य दोनों धातुओ का सम्मिलित उदाहरण है।

नियन्तृकर्तृकस्य वहेरनिषेधः। यह भी वार्तिक है। **कारके** का अधिकार तो है ही साथ ही प्रकृतसूत्र से **अणि, कर्ता, णौ** और **कर्तुरीप्सिततमं कर्म** से **कर्म** की अनुवृत्ति रहती है। वार्तिकार्थः- यदि वह्-धातु का कर्ता नियन्त्रक, नियन्ता, सारथि आदि के रूप में हो तो अण्यन्त अवस्था के कर्ता की ण्यन्तावस्था में कर्मसंज्ञा का निषेध नहीं होता। यह **नीवह्योर्न** वार्तिक से प्राप्त कर्मसंज्ञा के निषेध का भी निषेध है।

वाहयति रथं वाहान् सूतः। सारथि घोड़ों से रथ चलवाता (खींचवाता) है। **सूत**=सारथि नियन्त्रण करने वाला कर्ता है। अण्यन्तावस्था का वाक्य है- **वाहाः रथं वहन्ति।** (वहन्ति इति वाहाः=अश्वाः) इसका कर्ता है- **वाहाः**=घोड़े। **वहति** को ण्यन्त करने पर **वाहयति** बनता है। गत्यर्थक होने के कारण अण्यन्तावस्था के प्रयोज्यकर्ता **वाह** की **गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणिकर्ता स णौ** से प्राप्त कर्मसंज्ञा का **नीवह्योर्न** वार्तिक से निषेध प्राप्त हुआ तो उसका भी **नियन्तृकर्तृकस्य वहेरनिषेधः** से अनिषेध होने पर पुनः उक्त सूत्र से ही कर्मसज्ञा हो जाती है, फलतः द्वितीयाबहुवचन में **वाहान्** बन जाता है।

आदिखाद्योर्न। यह वार्तिक है। **कारके** का अधिकार तो है ही साथ ही प्रकृतसूत्र से **अणि, कर्ता, णौ** और **कर्तुरीप्सिततमं कर्म** से **कर्म** की अनुवृत्ति रहती है। वार्तिकार्थः- **अद्** और **खाद्** धातुओं के अण्यन्त अवस्था के कर्ता की ण्यन्तावस्था में कर्मसंज्ञा नहीं होती। ये दोनों धातुयें प्रत्यवसानार्थक हैं, अतः प्रकृतसूत्र से अण्यन्तावस्था के कर्ता की ण्यन्तावस्था में कर्मसंज्ञा की प्राप्ति थी, उसका इस वार्तिक से निषेध किया गया है।

आदयति खादयति वान्नं बटुना। मूल में प्रदर्शित दोनों धातुओं का प्रयोग किया है। इसके दो वाक्य बनाने होंगे-

आदयति अन्नं बटुना (देवदत्तः)। देवदत्त बटु=बालक को अन्न खिलाता है। अण्यन्तावस्था का वाक्य है- **बटुः अन्नम् अत्ति।** इसका कर्ता है- **बटु।** भक्षणार्थक **अद्** धातु को ण्यन्त करने पर **आदयति** बनता है। प्रत्यवसानार्थक होने के कारण

अण्यन्तावस्था के प्रयोज्यकर्ता **बटु** की **गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणिकर्ता स णौ** से कर्मसंज्ञा प्राप्त होने पर उसका **आदिखाद्योर्न** वार्तिक से निषेध हो जाने से द्वितीया नहीं हुयी, अपितु **कर्तृकरणयोस्तृतीया** से तृतीया होकर **बटुना** बन जाता है।

खादयति अन्नं बटुना। (देवदत्तः)। देवदत्त बटु को अन्न खिलाता है। अण्यन्तावस्था का वाक्य है- **बटुः अन्नं खादति।** इसका कर्ता है- **बटु।** भक्षणार्थक **खाद्** धातु को ण्यन्त करने पर **खादयति** बनता है। प्रत्यवसानार्थक होने के कारण अण्यन्तावस्था के प्रयोज्यकर्ता **बटु** की **गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणिकर्ता स णौ** से कर्मसंज्ञा प्राप्त होने पर उसका **आदिखाद्योर्न** वार्तिक से निषेध हो जाने से द्वितीया नहीं हुयी, अपितु **कर्तृकरणयोस्तृतीया** से में तृतीया होकर **बटुना** बन जाता है।

भक्षेरहिंसार्थस्य न। यह वार्तिक है। पूर्व वार्तिकों की तरह इसमें भी **कारके** का अधिकार तो है ही साथ ही प्रकृतसूत्र से **अणिकर्ता, णौ** और **कर्तुरीप्सिततमं कर्म** से **कर्म** की अनुवृत्ति रहती है। वार्तिकार्थः- **अहिंसार्थक भक्ष्** धातु के अण्यन्त अवस्था के कर्ता की ण्यन्तावस्था में कर्मसंज्ञा नहीं होती। यह धातु प्रत्यवसानार्थक है, अतः प्रकृतसूत्र से अण्यन्तावस्था के कर्ता की ण्यन्तावस्था में कर्मसंज्ञा की प्राप्ति थी, उसका इस वार्तिक से निषेध किया गया है। भोजन, रोटी, अन्न खाना हिंसा नहीं है।

भक्षयत्यन्नं बटुना (देवदत्तः)। देवदत्त बटु को अन्न खिलाता है। **भक्ष्** धातु चुरादि की है। अतः स्वार्थिक णिच् होकर **भक्षयति** रूप बनता है। स्वार्थिक णिजन्त से प्रेरणा अर्थ में **हेतुमति च** पुनः णिच् होने पर प्रथम णिच् का **णेरनिटि** सूत्र से लोप होने से हेतुमण्ण्यन्त में भी **भक्षयति** ही बनता है। स्वार्थिक ण्यन्तावस्था किन्तु प्रेरणार्थ में अण्यन्तावस्था का वाक्य है- **बटुः अन्नं भक्षयति।** इसका कर्ता है- **बटु।** भक्षणार्थक **भक्ष्** धातु को हेतुमान् ण्यन्त करने पर भी **भक्षयति** ही बना है। प्रत्यवसानार्थक होने के कारण अण्यन्तावस्था के प्रयोज्यकर्ता **बटु** की **गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मका- णामणिकर्ता स णौ** कर्मसंज्ञा प्राप्त होने पर उसका **भक्षेरहिंसार्थस्य न** वार्तिक से निषेध हो जाने से द्वितीया नहीं हुयी, अपितु **कर्तृकरणयोस्तृतीया** से तृतीया होकर **बटुना** बन जाता है।

अहिंसार्थस्य किम्? भक्षयति बलीवर्दान् सस्यम्। प्रकृत वार्त्तिक में **अहिंसार्थस्य** पद का क्या प्रजोजन है? ताकि जो हिंसार्थक नहीं है, ऐसे भक्ष् धातु के अण्यन्त अवस्था के कर्त्ता की ण्यन्त अवस्था में कर्मसञ्ज्ञा का निषेध हो किन्तु जो हिंसार्थक भक्ष् धातु होगा, उसके कर्ता की कर्मसञ्ज्ञा हो जाय। जैसे कि **भक्षयति बलीवर्दान् सस्यम्** (बैलों को फसल (अन्न) खिलाता है)। यहाँ पर सामान्यावस्था है- **भक्षयन्ति बलीवर्दाः सस्यम्।** स्वार्थिक ण्यन्त किन्तु प्रेरणार्थक अण्यन्त अवस्था के कर्ता **बलीवर्द** की ण्यन्त अवस्था में कर्मसञ्ज्ञा का निषेध नहीं हुआ अपितु प्रकृतसूत्र से ही कर्मसंज्ञा होकर **बलीवर्दान्** बन जाता है। पराया खेत चराने में **हिंसा** है। हरी फसल में अन्तःप्रज्ञ जीव की विद्यमानता मानी जाती है। अतः ऐसे फसल का विनाश हिंसा मानी जाती है।

जल्पतिप्रभृतीनामुपसंख्यानम्। यह भी वार्तिक है। इसमें भी **कारके** का अधिकार तो है ही साथ ही प्रकृतसूत्र से **अणिकर्ता, णौ** और **कर्तुरीप्सिततमं कर्म** से **कर्म** की अनुवृत्ति भी रहती है। वार्तिकार्थः- **जल्प्** आदि धातुओं के अण्यन्त अवस्था के कर्ता की ण्यन्तावस्था में कर्मसंज्ञा होती है। प्रकृतसूत्र के पाँच प्रकार की धातुओं में जल्प् आदि धातुओं का अन्तर्भाव न होने के कारण कर्मसंज्ञा अप्राप्त होने पर तदर्थ इस वार्तिक का अवतरण किया गया है। वार्तिक में **प्रभृति** शब्द से **व्याहरति, वदति** आदि क्रियाओं का भी संग्रह मान लिया जाता है। भाष्य में तो **जल्पति, विलपति, आभाषते** को ही जल्पतिप्रभृति माना है। इस विषय में कुछ आचार्य मानते हैं कि जल्पत्यादि की यही परिगणनस है अर्थात् इतनी ही धातुओं को जल्पत्यादि माना गया है। कुछ और आचार्य कहते हैं कि भाष्य में सम्पूर्ण जल्पत्यादि धातुओं का परिगणन नहीं है, अपितु उदाहरण मात्र दिया गया है, वास्तव में जल्पत्यादि बहुत धातुयें हैं।

जल्पयति भाषयति वा धर्मं पुत्रं देवदत्तः। मूलकार ने दो धातुओं का प्रयोग एक साथ दिया है। इनके दो वाक्य बनाने होंगे- **जल्पयति धर्मं पुत्रं देवदत्तः** और **भाषयति धर्मं पुत्रं देवदत्तः।**

जल्पयति धर्मं पुत्रं देवदत्तः। देवदत्त पुत्र से धर्म कहलवाता है। यहाँ पर अण्यन्तावस्था का वाक्य है- **जल्पति धर्मं पुत्रः** और इसका कर्ता है- **पुत्र।** ण्यन्तावस्था में **जल्पयति** बनता है। अण्यन्तावस्था के कर्ता **पुत्र** की **जल्पतिप्रभृतीनामुखसंख्यानम्** से कर्मसंज्ञा हो जाने पर द्वितीया होकर **पुत्रम्** बन जाता है।

भाषयति धर्मं पुत्रं देवदत्तः। देवदत्त पुत्र से धर्म कहलवाता है। यहाँ पर अण्यन्तावस्था का वाक्य है- **भाषते धर्मं पुत्रः** और इसका कर्ता है- **पुत्र।** ण्यन्तावस्था में **भाषयति** बनता है। अण्यन्तावस्था के कर्ता **पुत्र** की **जल्पतिप्रभृतीनामुखसंख्यानम्** से कर्मसंज्ञा हो जाने पर द्वितीया होकर **पुत्रम्** बन जाता है।

दृशेश्च। यह भी वार्तिक है। **कारके** का अधिकार तो है ही साथ ही प्रकृतसूत्र से **अणि, कर्ता, णौ** और **कर्तुरीप्सिततमं कर्म** से **कर्म** की अनुवृत्ति रहती है। वार्तिकार्थः- **दृश्** धातु के अण्यन्त अवस्था के कर्ता (प्रयोज्य कर्ता) की ण्यन्तावस्था में कर्मसंज्ञा होती है। प्रकृतसूत्र में उल्लेखित पाँच प्रकार की धातुओं **दृश्** धातु का अन्तर्भाव न होने कर्मसंज्ञा अप्राप्त होने पर इस वार्तिक का अवतरण किया गया है।

दर्शयति हरिं भक्तान्। (पुजारी) भक्तों को हरि का दर्शन कराता है। यहाँ पर अण्यन्तावस्था का वाक्य है- **भक्ताः हरिं पश्यन्ति** और इसका कर्ता है- **भक्त।** दृश्-धातु के ण्यन्तावस्था में **दर्शयति** बनता है। अण्यन्तावस्था के कर्ता **भक्त** की **दृशेश्च** वार्तिक से कर्मसंज्ञा हो जाने पर द्वितीया होकर **भक्तान्** बन जाता है।

सूत्रे ज्ञानसामान्यार्थानामेव ग्रहणम्, न तु तद्विशेषार्थानामित्यनेन ज्ञाप्यते। अर्थात् **गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थ०** सूत्र में गृहीत **बुद्धि** शब्द से सामान्य ज्ञान (जानना) मात्र अर्थ को प्रकट करने वाली धातुओं का ग्रहण है किन्तु तद्विशेषार्थ=ज्ञानविशेषार्थ **स्मृ, घ्रा, दृश्** आदि धातुओं का ग्रहण नहीं है, यह बात **अनेन=दृशेश्च** वार्तिक के द्वारा ज्ञापित होती है। यद्यपि देखने, सुनने, सूँघने, स्पर्श करने से भी ज्ञान ही होता है तथापि ये ज्ञानविशेष माने जाते हैं और जानना अर्थ ज्ञानसामान्य कहलाता है। यदि प्रकृतसूत्र के **बुद्धि** शब्द से ज्ञानविशेषवाची धातुओं का भी ग्रहण होता तो **दृशेश्च** वार्तिक की कोई आवश्यकता ही नहीं पड़ती। वार्तिककार ने उक्त वार्तिक बनाया है, अतः ज्ञापित होता है कि सूत्र में ज्ञानसामान्यवाची धातुओं का ही ग्रहण है।

तेन स्मरति जिघ्रतीत्यादीनां न। स्मारयति घ्रापयति वा देवदत्तेन। तेन=प्रकृतसूत्र के **बुद्धि** शब्द से ज्ञानसामान्य अर्थ वाली धातुओं का ही ग्रहण होने से, ज्ञानविशेषवाची **स्मृ, घ्रा** आदि धातुओं के रूप **(स्मरति, जिघ्रति** के) अण्यन्तावस्था के कर्ता की ण्यन्तावस्था में कर्मसंज्ञा प्रकृतसूत्र से नहीं हो पाती। अतः **स्मारयति देवदत्तेन, घ्रापयति देवदत्तेन** ऐसे तृतीयान्त प्रयोग किया जाता है। **देवदत्तः स्मरति, तं यज्ञदत्तः प्रयुङ्क्ते- यज्ञदत्तो देवदत्तेन स्मारयति** (यज्ञदत्त देवदत्त से याद करवाता है)। **देवदत्तो जिघ्रति, तं यज्ञदत्तः प्रयुङ्क्ते- यज्ञदत्तो देवदत्तेन घ्रापयति** (यज्ञदत्त देवदत्त से सुँघाता है)।

शब्दायतेर्न। यह वार्तिक है। **कारके** का अधिकार तो है ही साथ ही प्रकृतसूत्र से **अणि, कर्ता, णौ** और **कर्तुरीप्सिततमं कर्म** से **कर्म** की अनुवृत्ति रहती है। वार्तिकार्थः- **शब्दाय** धातु की अण्यन्त अवस्था के कर्ता की ण्यन्तावस्था में कर्मसंज्ञा नहीं होती। यहाँ **शब्दं करोति** अर्थ में **शब्द+अम्** से **शब्दवैरकलहाभ्रकण्वमेघेभ्यः करणे** सूत्र से **क्यङ्** प्रत्यय होने पर क्यङ्-प्रत्ययान्त की **सनाद्यन्ता धातवः** से धातुसंज्ञा, **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से अम् का लुक् होकर **शब्द+य** बनने के बाद **अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः** सूत्र से दीर्घ होकर **शब्दाय** धातु बनी है। इसका अण्यन्त रूप **शब्दायते** और ण्यन्तरूप **शब्दाययति** है।

शब्दाययति देवदत्तेन। कोई देवदत्त से हल्ला करवाता है। अण्यन्तावस्था का वाक्य है- **देवदत्तः शब्दं करोति** (देवदत्त शब्द करता है)। इसका कर्ता है- **देवदत्त। शब्दाय** धातु को ण्यन्त करने पर भी **शब्दाययति** ही बना है। अकर्मक धातु होने के कारण अण्यन्तावस्था के प्रयोज्यकर्ता **देवदत्त** की ण्यन्तावस्था में **गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थ- शब्दकर्माकर्मकाणामणि कर्ता स णौ** कर्मसंज्ञा प्राप्त होने पर उसका **शब्दायतेर्न** वार्तिक से निषेध हो जाने से द्वितीया नहीं हुयी, अपितु **कर्तृकरणयोस्तृतीया** से तृतीया होकर **देवदत्तेन** बन जाता है।

अब यहाँ यह प्रश्न है कि क्यङन्त **शब्दाय** धातु को किस कोटि में मानकर प्रकृतसूत्र से प्राप्ति थी? इसका समाधान मूलकार कर रहे हैं-

धात्वर्थसंगृहीतकर्मत्वेन अकर्मकत्वात् प्राप्तिः। जिन धातुओं के अर्थ में कर्म संगृहीत होता है, उनको अकर्मक माना जाता है और **शब्दाय** धातु के अर्थ में कर्म संगृहीत हुआ होता है। अतः अकर्मक मानकर के प्रकृतसूत्र से प्राप्ति थी, जिसका प्रकृत वार्तिक से निषेध किया गया है। **शब्दाय** धातु से **शब्द करना** अर्थ अभिलक्षित है। अतः इसमें अकर्मकत्व स्पष्ट है।

अकर्मक धातुयें दो तरह की होती हैं। प्रथम तो जिसमें किसी भी स्थिति में कर्म लग ही नहीं सकता और दूसरी उन धातुओं में भी अकर्मकत्वेन व्यवहार होता है जिनमें कर्म के लगने की योग्यता तो होती है किन्तु कर्म की विवक्षा नहीं की जाती। प्रकृतसूत्र में प्रथम प्रकार की धातुओं का अकर्मकत्वेन ग्रहण है अथवा द्वितीय प्रकार की अकर्मक धातुओं का? इस प्रश्न का समाधान मूलकार कर रहे हैं-

येषां देशकालादिभिन्नं कर्म न संभवति तेऽत्राकर्मकाः, न त्वविवक्षित- कर्माणोऽपि। अर्थात् जिनका **देश** और **काल** से भिन्न कर्म सम्भव ही न हो, ऐसी धातुयें ही प्रकृत सूत्र में अकर्मक मानी गयी हैं परन्तु जिनमें कर्म अविवक्षित हो, उन्हें यहाँ अकर्मक नहीं कहा गया है।

तेन 'मासमासयति देवदत्तम्' इत्यादौ कर्मत्वं भवति, 'देवदत्तेन पाचयति' इत्यादौ तु न। अर्थात् **तेन**=**देश** और **काल** से भिन्न कर्म जिन धातुओं में सम्भव ही नहीं है, ऐसी धातुओं का प्रकृतसूत्र में अकर्मकत्वेन गृहीत होने के कारण **मासम् आसयति देवदत्तम्** में अण्यन्तावस्था के कर्ता की ण्यन्तावस्था में कर्मसंज्ञा हो जाती है किन्तु **देवदत्तेन पाचयति** में अण्यन्तावस्था के कर्ता की ण्यन्तावस्था में कर्मसंज्ञा नहीं होती। अतः निम्नलिखित में कर्मसञ्ज्ञा होती है। यथा–

मासम् आसयति देवदत्तम्। देवदत्त को एक मास तक बिठाता है। **मासम् आस्ते देवदत्तः** यह सामान्य अवस्था है। **आस्** धातु अकर्मक है। इसमें **देश, काल** के अतिरिक्त अन्य कोई कर्म सम्भव नहीं है। अतः अण्यन्त अवस्था के कर्ता **देवदत्त** की ण्यन्तावस्था में **गतिबुद्धि०** सूत्र से ही कर्मसञ्ज्ञा होकर **देवदत्तं मासम् आसयति** वाक्य बनता है। यहाँ पर **मासम्** कर्म के रहते हुये भी धातु को अकर्मक ही माना गया है, क्योंकि उपर्युक्त नियम से देश, काल से भिन्न कर्म के लगने की योग्यता होने पर ही प्रकृतसूत्र में धातु को अकर्मक माना जाता है।

देवदत्तेन पाचयति। देवदत्त से (ओदन) पकवाता है। **देवदत्तः पचति** यह सामान्यावस्था है। इसका प्रयोज्यकर्ता **देवदत्त** है। **पच्** धातु में देश, काल से भिन्न कर्म सम्भव होते हैं। यद्यपि प्रकृतवाक्य में कर्म की अविवक्षा की गयी है तथापि कर्म लगने की योग्यता है। उपर्युक्त नियम से इस अविवक्षितकर्मा **पच्** धातु को अकर्मक नहीं माना जा सकता। अतः अकर्मक धातु को मानकर **गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थ०** से होने वाली कर्मसञ्ज्ञा यहाँ नहीं हो सकती। अतः **देवदत्तं पाचयति** न होकर **देवदत्तेन पाचयति** बन जाता है। यहाँ पर कर्म की विवक्षा न किये जाने के कारण पच्–धातु अकर्मक है किन्तु प्रकृतसूत्र से अविविक्षतकर्म वाली धातुयें अकर्मत्वेन गृहीत नहीं होतीं।